सन्मार्ग प्रचार समिति, केकड़ी के

-: प्रकाशन :-

पुष्प नं	ग्रन्थ नाम	पृष्ठ	मूल्य	प्रकाशन काल
१.	पद्मावती पूजा मिथ्यात्व है	३०	५० पैसे	सन् १९७२
२.	शासन देव पूजा रहस्य	५०	२) रु०	,, १९७५
	(विद्वद् परिषद् द्वारा १००१) रु. से पुरस्कृत)			
३.	जैन धर्म में रात्रि पूजा का निषेध	२४	१) रु०	,, १९७६
४.	सम्यक् पूजा विधि	२०	१) रु०	,, १९८०
५.	स्त्री प्रक्षाल निषेध	६०	२) रु०	,, १९८४
६.	केशर पुष्प विधान		१) रु०	,, १९८७

निम्नांकित प्रकाशन भी उपलब्ध हैं :-

१	जैन निबध रत्नावली (सजिल्द)	पृष्ठ ५००	मूल्य ७) रु०	सन् १९६६
२	सामायिक पाठादि संग्रह	१२५	१)५०	सन् १९५४
३.	चूनड़ी (ज्ञान कुंजी)	२०	७५ पैसे	सन् १९६०

प्राप्ति स्थान :-

मिलापचन्द्र रतनलाल कटारिया

केकड़ी (अजमेर) ३०५४०४

KEKRI (Rajasthan)

श्री मिलापचन्द्र कटारिया जैन ग्रन्थमाला

पुष्प नं० ६

शाह पं० जौहरीलालजी बिलाला, जयपुर कृत

केशर पुष्प विधान

(जिन बिम्ब निरावरण यथावत् रूप)

सम्पादक :

रतनलाल कटारिया

केकड़ी (अजमेर)

प्रकाशक :

श्री घेवरीदेवी गंगवाल चेरीटेबल ट्रस्ट

रेणवाल (किशनगढ़) जिला जयपुर ३०३६०३

(सन्मार्ग प्रचार समिति केकड़ी के सौजन्य से)

☐ पुस्तक : **केशर पुष्प विधान**

☐ लेखक : शाह पं० जौहरीलालजी (शुद्धाम्नायी) जयपुर

☐ मूल्य : रु० १)

☐ संपादक : पं० रतनलाल कटारिया, केकड़ी ३०५४०४

☐ प्रकाशन समय : जनवरी सन् १९८७

☐ प्रथम संस्करण : ५०० प्रति

☐ द्रव्य प्रदाता :

श्री घेवरदेवी गंगवाल चेरीटेबल ट्रस्ट,

रेणवाल (किशनगढ़, जयपुर) ३०३६०३

☐ मुद्रक : श्री वीर प्रेस, मनिहारों का रास्ता, जयपुर-३

☐ ग्रन्थ माला : श्री मिलापचन्द्र कटारिया जैन ग्रन्थ माला

☐ पुष्प : पुष्प नं० ६

△ मंत्री : पदमकुमार कटारिया, केकड़ी

—: ग्रामुख :—

इस सन्मार्ग-प्रकाशक ग्रन्थ के रचयिता सुकवि श्री जौहरीलालजी शाह, बिलाला जयपुर के हैं। "शाह भी वैसे गोत्र है किन्तु यहाँ 'शाह' साहूकार सेठ के अर्थ में इनके लिए बूंक (बैंक) रूप से प्रसिद्ध हो गया है, वैसे इनका गोत्र बिलाला है। जैसे— भाव दीपिकादि के कर्त्ता दीपचन्दजी शाह भी प्रसिद्ध रहे हैं, इनका भी शाह गोत्र नहीं है, इनका गोत्र कासलीवाल है। शाह को नाम के अन्त में लगाने से गोत्र का भ्रम हो जाता है, अगर पहले लगा लेवें तो निर्भ्रान्तता रह सकती है।

पंडित प्रवर जौहरीलालजी की एक और अत्यन्त मनोहर रचना सुप्रसिद्ध है जो सं० 1949 की "बीस-विहरमान पूजा" है। यह अनेक जगहों से छप चुकी है और काफी लोक-प्रिय है। इसमें प्राशुक द्रव्यों से पूजा करना लिखा है।

राजस्थान जैन ग्रन्थ भण्डार सूची भाग 4 में "बीस-विहरमान पूजा" के कर्त्ता शाह जौहरीलालजी को बिलाला गोत्री लिखा है।

इनकी यह प्रस्तुत "केशर पुष्प विधान" रचना भी आज से करीब 100 वर्ष पुरानी है। यह गद्य पद्य (चम्पू) रूप में प्रणीत है। बहुत ही युक्ति पुरस्सर और गंभीर चिन्तन के बाद प्रमाण-पुरस्सर लिखी गई है। रोचक भी है।

कवि ने शुरू में ग्रन्थ का—"जिनबिम्ब-निरावरण यथावत् रूप श्रद्धान ज्ञान प्रश्नोत्तर व्याख्यान" इतना बड़ा नाम दिया है। लिपिकार ने अंतिम पद्य के आधार पर ग्रन्थान्त में 'प्रश्नोत्तर व्याख्यान' नाम दिया है।

यह पुस्तक 40–50 वर्ष पहिले अलग-अलग जयपुर–अजमेर से भी "केशर पुष्प विधान" नाम से ही छपी है किन्तु वे प्रकाशन बहुत ही दशरा-मशरा और कुछ अशुद्ध छपे हैं।

मैंने उक्त दोषों को हटाकर इसे सुसम्पादित रूप में प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ का "केशर पुष्प विधान" नाम सं० 1965 की हस्तलिखित प्रति में रहा प्रतीत होता है जिससे ये सब संस्करण बने हैं। इस नाम से ग्रंथ-कारने यह विधि विधान बताया है कि—केशर पुष्प जिन चरणों पर नहीं चढ़ाना (आगे, प्राशुक रूप में चढ़ाना) यही सही केशर पुष्प का पूजा-विधान है।

इस ग्रन्थ में दोहा, सवैया, अडिल्ल में कुल 27 पद्य हैं और गद्य में कुल 11 प्रश्नोत्तर हैं। इसमें कुल 9 ग्रंथों की साक्षी दी है जिनके नामों की सूची अन्त में परिशिष्ट में दे दी है। परिशिष्ट में प्रसंगानुकूल और भी कुछ आवश्यक बातों पर विचार किया गया है। समाज ने अगर इसे पसन्द किया तो ऐसी ही एक और सुन्दर कृति जो इससे भी प्राचीन है—श्री छीतरमलजी काला, इन्दौर द्वारा रचित है उसे प्रकट करने का विचार है। यह विक्रम सं० 1925 की रचना है इसका नाम भी "श्री जिन प्रतिमा यथावत् स्वरूप प्रश्नोत्तर चर्चा" है।

समाज में आज सही बात कहने का साहस, यहाँ तक कि सही बात सुनने तक का माद्दा नहीं रहा है। अनेक प्राचीन अच्छी क्रियायें लोप की जा रही हैं और वीतराग मार्ग के विरुद्ध, भ्रष्ट और सराग क्रियायें प्रचलित की जा रही हैं; वह भी हमारे धर्म गुरुओं द्वारा, इससे बढ़कर और क्या परिताप की बात होगी? "विचित्राः कालशक्तयः"।

आज जिस तरह लोकमें भ्रष्टाचार व्यापक ही नहीं, इतना आवश्यक हो गया है कि—अब तो कोई उसके विरोध की बात तक भी सुनना गंवारा नहीं करता। यही स्थिति धर्म मार्ग में भी बनती जा रही है। ऐसी हालत में शुद्ध मार्गी साधुओं और विद्वानों तथा धर्म-बन्धुओं का परम कर्त्तव्य है कि—वे इसका नियंत्रण करें।

धर्मनाशे क्रियाध्वंसे, स्वसिद्धांतार्थ-विप्लवे।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं, तत्स्वरूप-प्रकाशने ॥१५॥

—"ज्ञानार्णव" अध्याय ६

(धर्म के नाश, सम्यक् क्रियाओं के लोप, धार्मिक सिद्धान्तों और उनके समीचीन अर्थों के नष्ट होने की अवस्था में वस्तु स्थिति को प्रकट करने के लिए बिना पूंछे भी बोलना चाहिये—इस विषय में किसी की कोई बाट जोहने की जरूरत नहीं है। आग लगी हो तो सबसे पहिले हर कीमत पर उसे बुझाने की जरूरत है, यही सच्ची धार्मिकता है।)

आज यह एक ज्वलन्त प्रश्न है कि—फूल और केशर चन्दन लगी प्रतिमा पूज्य है या अपूज्य? इस विषय में बहुत से लोग सबको प्रसन्न रखने के नाम पर, उदारता का बहाना कर और प्रतिमा के अनादर की आशंका से अपूज्य कहने की हिम्मत नहीं करते। विद्वान् भी जानते हुए उदासीन बने रहते हैं, जबकि इस पुस्तक में शुरू में ही इस प्रश्न को उठाकर ऐसी प्रतिमा को स्पष्ट रूप से अपूज्य कहा है और आगे बताया है कि—अगर ऐसा नहीं मानोगे तो फिर दि० द्वारा श्वे० प्रतिमा भी पूज्य हो जायेगी। अकलंक देव ने तो मामूली सूत का धागा डालकर ही प्रतिमा को अपूज्य मान लिया था, यहाँ तो स्पष्ट शृंगार-सरागता के चिह्न हैं तब वह बिना किसी हील-हुज्जत के

अपूज्य ठहरेगी ही। यह तो प्रत्यक्ष में ही बाधित है। फिर भी ग्रन्थकार ने अनेक युक्तियाँ और प्रमाण अपूज्यता के लिए दिये हैं। बनारसी विलास में पं० प्रवर बनारसीदासजी ने, भाव दीपिका में पं० दीपचन्दजी शाह कासलीवाल ने, ज्ञानानंद श्रावकाचार यानि टोडरमल श्रावकाचार में ब्र० रायमल्लजी ने, तीन लोक पूजा बिधान में पं० टेकचन्दजी ने, रत्नकरण्डादि की टीका में पं० सदासुखदासजी ने, विद्वज्जन बोधक में पं० पन्नालालजी संघी दूनी वालों ने, ज्ञान सूर्योदय नाटक की वचनिका में पं० पारसदासजी निगोत्या ने, और बीस विहरमान पूजा में पं० जौहरीलालजी शाह बिलाला ने केशर पुष्प लगी प्रतिमा को अपूज्य माना है। ऐसा ही आचार्य कल्प पं. टोडरमलजी, पं. दौलतरामजी, पं० भूधरदासजी, पं० जयचन्दजी छाबड़ा, पं० भागचन्दजी छाजेड़, पं० द्यानतरायजी, भैया भगवतीदासजी, पं० रामचन्द्रजी, पं० छीतर मलजी काला इन्दौर और पं. थानमलजी टौंक निवासी आदि अनेकों ग्रन्थकारों ने भी माना है। ये सब प्रसिद्ध विद्वान् बहुश्रुतज्ञ और शास्त्र मर्मज्ञ रहे हैं।

हमने भी "सम्यक् पूजाविधि" पुस्तक में अनेक नई-नई युक्तियों और प्राचीन प्रमाणों से इस पर खूब प्रकाश डाला है। सन्मार्ग प्रचार समिति के उक्त ट्रेक्ट नं० 4 को उपयोगी और महत्वपूर्ण समझकर पूज्य मुनिवर श्री विजयसागरजी महाराज सा० ने अपने लोकप्रिय ग्रन्थ–'आगम दीपिका' के अन्त में ग्रथित किया है। पाठकों को इन्हें भी पढ़कर लाभ उठाना चाहिये।

दिनांक
1/11/86
दीपावली

—रतनलाल कटारिया (सम्पादक)
केकड़ी (अजमेर–राजस्थान)
305404

प्रकाशकीय

हमें आज श्री घेवरीदेवी गंगवाल चेरीटेबल ट्रस्ट की तरफ से "केशर पुष्प विधान" पुस्तक प्रकाशित कराते हुए परम हर्ष हो रहा है। इसके पहिले इस ट्रस्ट से दो पुस्तकें (1–श्री नित्य पूजा पाठ संग्रह, 2–"आत्म प्रसून" संपादिका श्री 105 श्री आर्यिका विशुद्धमतिजी) प्रकाशित हो चुकी हैं। यह ट्रस्ट की तरफ से प्रकाशित की जाने वाली तीसरी पुस्तक है।

—दि० जैन समाज में मंदिरों में जो पूजा विधि वर्तमान में प्रचलित है उसे बीस पंथ व तेरा पंथ आम्नाय के नाम से जाना जाता है। श्री अर्हंत भगवान् की वीतरागी प्रतिमा की पूजा आर्ष मार्गानुसार किस विधि से निर्दोष तरीके से हो सकती है व उसमें वर्तमान में क्या–क्या विकृतियां आ गई है इस संबंध में श्री पं० रतनलालजी कटारिया ने गत 15 वर्षों में छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में विभिन्न ट्रेक्ट लिखकर प्रकाशित कराये हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी वीतरागी प्रतिमाओं पर केशर न लगाने व उनके चरणों पर सचित्त पुष्प न चढ़ाने से सम्बन्धित है। पुस्तक के रचयिता श्री जौहरीलालजी शाह ने इस सम्बन्ध में कवित्त रूप में पूर्ण प्रकाश डाला है। लेखक का स्पष्ट अभिप्राय है कि वीतरागी भगवान की प्रतिमा पर केशर लगाना व उनके चरणों पर सचित्त पुष्प चढ़ाना–प्रतिमा की निर्ग्रंथ अवस्था को दूषित व विकृत करता है। भगवान की पूजा अचित्त (केशर से रंगे हुए) पुष्पों से ही करना चाहिए, यही निर्दोष तरीका है। सचित्त पुष्पों में तो स्थावर हिंसा के साथ त्रस हिंसा का भी दोष लगता है।

यह बड़े दुःख की बात है कि वर्तमान में जिन मंदिरों में इस प्रकार की सदोष आम्नाय प्रचलित नहीं है वहाँ भी उक्त विकृतियों को चालू करने के लिए श्रावकों को कतिपय साधु संघों व आर्यिका माताओं द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है। इससे आर्षमार्ग की परम्परा का तो लोप होता ही है साथ ही समाज में अशांति व कटु वातावरण भी बनता है। यह विचारणीय है।

श्री कटारियाजी द्वारा कुछ दिनों पहिले ग्राम कुंकनवाली में पूज्य श्री 108 मुनि श्री विजय सागरजी की समाधि के अवसर पर उनसे हुई बातचीत के अनुसार इस पुस्तक को प्रकाशित करवाने की हमने स्वीकृति दी थी, उसी के अनुसार यह प्रकाशित की जा रही है। आशा है पाठक इससे लाभ उठावेंगे।

रेनवाल (किशनगढ़)
जनवरी 1987

गुलाबचन्द गंगवाल

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

अथ "जिन बिम्ब निरावरण यथावत रूप श्रद्धान दिढ़ावन प्रश्नोत्तर-व्याख्यान" लिख्यते :

दोहा

वीतराग सर्वज्ञ पद, वंदूं मन वच काय।
निरावरण निर्लेप अति, शुद्ध स्वरूप जिनाय ॥१॥
काल दोष कूं पाय के, भेषी भरचा अपार।
जिन-मुद्रा कूं मेटि के, कियो राग शृंगार ॥२॥
तिनके भ्रमतम हरन कूं, प्रश्नोत्तर व्याख्यान।
सुणि भवि चित अनुभव करो, जिन-प्रतिमा श्रद्धान ॥३॥

१. प्रश्न—केशरि करि लिप्त अर फूलमाल गंध केवड़ा करि वेष्टित बिम्ब पूज्य है कि अपूज्य है ?

उत्तर—अपूज्य है।

२. प्रश्न—ऐसे बिम्ब के पूजने में कहा दोष है ?

उत्तर—यामें सग्रन्थपना आवे है, अपने जिन-मत में तो तिल के तुष मात्र ही परिग्रह करि सहित अवस्था वन्दनीक है नांही। अर केशर तो बहुमोलि वस्तु है, अर चन्दन फूलमाला गंध केवड़ा विषयासक्त लगावे है, इहाँ संभवे नांही।

३. प्रश्न—तिल के तुष मात्र परिग्रह का निषेध तो गुरु के किया है, किछु जिन-बिम्ब के तो किया ही नांही।

उत्तर—पहले गुरु अवस्था होय है पीछे देव पदवी मिले है, जहाँ पहली अवस्था जो गुरु पदवी तांही में तिल के तुष मात्र परिग्रह का त्याग भया तहाँ पिछली अवस्था रूप जो देव पदवी सो तो गुरुपद सूं भी बड़ा पद है, क्योंकि गुरु पद में तो क्षयोपशम ज्ञान था, अब क्षायिक ज्ञान भया। बहुरि गुरुपद में तो जीव गुण के घातक घातिया कर्म बैठे थे, अर देवपद में तिनका अभाव भया, बहुरि गुरुनि कूं तो देव पदवी नांही अर देवनिकूं गुरु पदवी संभवै है, ऐसे बड़े पद में परिग्रह का लेश हू कैसे संभवै, कदापि नांही संभवै ॥

उदाहरण—जैसे काहू मनुष्य ने कंदमूल का त्याग किया तब वाके अणुव्रतादि भये, पीछे ते कंदमूल कैसे ग्रहण होय, तहाँ तो अधिक अधिक विशुद्धता चाहिये, तैसे ही जानना।

४. प्रश्न—केशरि चन्दन फूलमाल गंध केवड़ा मात्र के लगावने सूं कहा परिग्रह भया ?

उत्तर—ताकूं पूछिये है कि—जो केशर चन्दन फूलमाल गंध केवड़ा परिग्रह में है कि नांही। जो वो कहे कि—ये तो परिग्रह में नांही तो प्रत्यक्ष ही जिनमत (अर लोकमत) सूं विरोधी बात कहे है। जो बहुमोली वस्तु केशरि चंदन पुष्पमाल गंध केवड़ा सो ही परिग्रह में नांही होय तो और यां सूं भी थोड़े मोल की अनेक वस्तु हैं ते सर्व परिग्रह में नांही ठहरे, तातें वस्तु थोड़ी मोल की हो वा बहुमोली हो सर्व वस्तु दश प्रकार के परिग्रह के भेदनिमें गर्भित है।

५. प्रश्न—केशरि फूलमाल गंध केवड़ा परिग्रह में तो है, एक बात तो हमने मानी, परन्तु भगवान् तो वीतराग हैं तिनके तो कछू लेश नांही, केशर वा फूलमाल गंध केवड़ा तो अपनी भगति करि हम लगाय वंदे हैं।

उत्तर—थोड़ी भक्ति किये थोड़ा फल अर घणी भक्ति कियाँ घनां फल होय तातें भगवान कूं अति भक्ति करि अच्छे अच्छे वस्त्र आभूषण पहराय २ क्यों न पूजिये, केशरि चन्दन फूलमाल गंध केवड़ादि भी परिग्रह में, भेद नांही, पुद्गल पिण्ड है, अर वस्त्र आभूषणादि भी पुद्गल पिण्ड रूप परिग्रह में है, तामें भेद कछू नांही।

६. प्रश्न—जो केशरि चन्दन फूलमाल गंध केवड़ा लगावे सो पापी। हमकूं तो रागद्वेष से काम नांही। हम तो पुण्य के अर्थि भगवान् कूं पूजे हैं।

उत्तर—जो लगावने वाला तो पापी भया हो, ताके पापी होने तें वंदे ते भी विशेष पापी हैं। यां जिनमत में

तो कृत कारित अनुमोदना पना से तो अपनी भक्ति करी हम ही लगाय वंदे हैं।

७. प्रश्न—कोई दृष्टान्त रूप वार्ता कहो।

उत्तर—जैसे काहू पुरुष ने विष मिश्रित लाडू बनाये अर यह कहे हमने तो लाडू बनाये नांही, जाने विष मिलाय बनाये सो जानूं, हमकूं तो लाडू स्वाद ही है ऐसे जाणि करि लाडू खाय सो प्राणां रहित कहा नहीं होय, अवश्य होय ही।

८. प्रश्न—वा फूलमाल गंध केवड़ा करि सहित बिम्ब ने देखि नहीं पूजिये है अर नहीं वंदिये है तो उल्टी भगवान के बिम्ब की अवज्ञा होय तो अवज्ञा का महा पाप लागे।

उत्तर—तुम्हारे कहने में तो श्वेतांबरादिक के बिम्ब हू पूज्य भये।

९. प्रश्न—कोई उदाहरण रूप वार्ता कहो।

उत्तर—श्री समन्तभद्राचार्य ते आप्त जे सर्वज्ञ तिनकी परीक्षा से संवाद करे हैं—मानूं सर्वज्ञ देव समन्तभद्राचार्य सूं पूंछा कि—हमारे में पूज्यपना काहें सू भया—देवनि के गर्भादिक कल्याणकनि में आगमन तें तथा चमर छत्रादि समवशरण की विभूति तें इत्यादि कार्य होने सों कहा। तब मानूं समन्तभद्राचार्य कहे हैं कि—हे भगवान्

आप हमारे तो इन बातनि करि पूज्य नांही, ए बातें तो मायावी जे इन्द्र जालादि विद्या जिनके पाइये हैं तथा अष्ट अणिमादि ऋद्धि के धारी देवनिहू के होय हैं, ते समस्त ही पूज्य हो जाय तातें हमारे तो आप वीतराग विज्ञान भावमय शांत मुद्रा जामें कछू विकार नांही तांकरि वंदनीक हो।

जो आपहू अर आपका चिह्नहू सरागरूप होय जाय तो हमारे वन्दनीक नहीं होय।

जो अवज्ञा आती तो तिनकूं भी पाप बंध ऐसे कहने में होता परन्तु तिन समन्तभद्राचार्य परमधीर जिन शास्त्र के पारगामी के दृढ़ श्रद्धान करि अतिशय पुण्य बंध ही होता भया।

१०. प्रश्न—जो ऐसो ही वीतराग दशा भई थी तो श्री भगवान् के समवशरणादि विभूति रूप लक्ष्मी क्यों भई?

उत्तर—भगवान् के तो कछु इच्छा है नांही, परन्तु तीर्थंकर नाम कर्म की पुण्य प्रकृति के उदय करि देवाँ कृत बाह्य पदार्थनि का संबंध हो है। सोहू भगवान के देह सूं दूरि तिष्ठे है—भगवान के देह सूं भिड़े नांही है। वे तो परमेश्वर, सिंहासन हूँ ते चार अंगुल प्रमाण स्पर्शवर्जित रहे हैं, तातें समवशरणादिक की विभूति हो अधिक उदासीनता कूं सूचे है।

जो केशरादि सुगंध द्रव्य ही सों चर्चे पुण्य बंध होता तो तहाँ इन्द्रादिक देव कल्पवृक्षनि के पुष्पनिकी माला पहिराय मलयागिर आदि स्वर्ग जनित उत्तम सुगंध सेती शरीर सूं लपटाय पूजते। (किन्तु ऐसा तो है नहीं)

तातें केशरादिक के लगावने सूं प्रथम तो वीतरागता का चिह्न बिगड़ जाय है। यां लोक में चन्दन केशरादि सुगंध द्रव्यनि का लेपन सरागी जीवनि के देखिये है। अर ये वीतराग, कैसे संभवे ? बहुरि दूसरे सग्रन्थपना का दूषण आवे है, अर ए निर्ग्रन्थ, तिलतुष मात्र हू के त्यागी।

११. प्रश्न—जो काहू की प्रसिद्ध बात होय तो कहो। किसने जिन-बिम्ब को अवज्ञा सग्रन्थ जांणिकरि करी ?

उत्तर—अकलंकाचार्य की कथा जैन ग्रन्थनि में प्रसिद्ध है तथा समस्त ही बाल वृद्ध जाने हैं कि—अकलंक देव एक सूत का सूक्ष्म डोरा डालि जिन-प्रतिमा उल्लंघ गये थे सो थोड़ा सा डोरा डालने मात्र ही सूं वंद्य न रही, तो केशरादिक द्रव्य तो बहुत है। तहाँ डोरा तो देह सूं भिन्न है अर केशर तो जल सूँ घुली हुई देह सूं तन्मय होय है। बहुरि डोरा तो थोड़े मोल का अर ये बहु-मोली, बहुरि डोरा सूं कछु विशेष सरागता भी नांही होय अर यासूं अति सरागता आवे है। जो डोरे ही के डालने मात्र अपूज्य भई तो केशरादि-चर्चित कैसे पूज्य होय। बहुरि जो केशर चर्चित बिम्ब के पूजने वंदने में दोष नांही माने हैं ताके

केशरादिवर्जित निरावरण के पूजने में दोष आया। जानें प्रतिपक्षी का स्वभाव ही है जो वह वांकू वा है अर वह वाकूं वा है। ऐसे तो बणे नहीं जो केशरादि चर्चित अर अर्चचित दोऊ ही वंदने में पुण्यबंध होय। जो चर्चित में पुण्यबंध होय तो अर्चचित में पाप बंध होय, अर जो अर्चचित में पुण्यबंध होय तो चर्चित में पाप बंध होय यह नियम बण्या है।

दृष्टान्त—जैसे पुण्यबंध सुख-कारण है। ऐसे नांही जो पाप-बंध और पुण्यबंध दोऊ ही दुख के कारण होय, तथा दोनूं ही सुख के कारण होय। यह तो अपने वचन सूं आप ही बांधी गई। औरनि करि कहा खंडिये, तातें और भी बहुत बात है, याही के विधि निषेध की पक्ष रहित जिनागम का अनुभव किये ही जाणी पड़े। ऐसे जानि हित मानि मिथ्या भानि साक्षात् वीतराग रूप दशा कूं प्राप्त होहू। बहुरि लेशमात्र हू जाके लगाव नांही ऐसी शांत मुद्रा अरिहंतनि की वंदनीक है।

सो ही श्री ज्ञानार्णव ग्रन्थ में ऐसे कह्या है :—

निःशेष भव-संभूत—क्लेशद्रुम-हुताशनं।
शुद्धमत्यन्त-निर्लेपं ज्ञान-राज-प्रतिष्ठितम् ॥१॥

अर्थ—बहुरि समस्त भयतें उपज्या क्लेश रूप द्रुम कहिये वृक्ष तिनकूं दग्ध करने कूं अग्नि समान है, बहुरि शुद्ध और अत्यन्त निर्लेप है—जाके लेप कदापि लगे नांही

है, बहुरि ज्ञान का राज्य सर्वज्ञपणां तांविषै स्थापित है। इस श्लोक में भी निर्लेप ही कह्या है। तथा इस ही ग्रन्थ में और भी कह्या है :—

निर्लेपो निष्कलः शुद्धो, निष्पन्नोऽत्यंत निर्वृतः।
निर्विकल्पश्च शुद्धात्मा, परमात्मेति वर्णितः ॥२॥

यां श्लोक में भी निर्लेप ही कह्या है। जहाँ देखिये तहाँ निर्लेप ही का वर्णन है, लेप लगाय पूजना तो कहीं कह्या नांही, बहुरि सहस्रनाम विषै (आदि पुराण पर्व श्लोक) भगवज्जिनसेनाचार्य भी निर्लेप ही कह्या है :

व्योममूर्तिरमूर्तात्मा, निर्लेपो निर्मलोऽचलः।
सोममूर्ति सु सौम्यात्मा, सूर्यमूर्ति महाप्रभः ॥३॥

और बाणारसी दास जी ने भी ऐसे ही कह्या है :

दोहा—जिन प्रतिमा जिन सारखी, कही जिनागम मांहि।
रंचमात्र दूषण लगे, पूजनीक सो नांहि ॥१॥
मेटी मुद्रा अविधि सूं, कुमति कियो कुदेव।
विघन अंग जिनबिम्ब को, तजे सुसमकिति सेव ।२।

बहुरि समयसारजी नाटक में प्रतिमा का माहात्म्य कथन :—

सवैया ३१ सा—

जाके मुख दरश सूं भगत के नैननिकूं,
थिरता की बानि बढी चंचलता विनसी।

मुद्रा देखे केवली की मुद्रा यादि आवे जहाँ,
जाके आगे इन्द्रकी विभूति लागे तृणसी ॥
जाके जस जंपत प्रकाश जागे हृदय में,
सो ही शुद्धमति होय, हूती जो मलीन सी ॥
कहत बनारसी सु महिमा प्रगट जाकी,
सोहे जिन छवि जो है विद्यमान जिनसी ॥

पुनः—

जाके उर अंतर सुदृष्टि की लहर लसी,
विनशी मिथ्यात मोहनिद्रा किम सारखी।
शैली जिन शासन की फैली जाके घट भयो,
गरब को त्यागी षट् दरव को पारसी ॥
आगम के अक्षर परत ही श्रवन जाके,
हृदय भंडार में समानी बानी आरसी ॥
कहत "बनारसी" अलप भवथिति जाकी,
सो ही जिन प्रतिमा प्रवानै जिन सारसी ॥६॥

बहुरि मोक्षमार्ग प्रकाशजी के आदि में टोडरमलजी कृत्रिम चैत्यालय कूं ऐसे नमस्कार किया है सो कहिये हैं :

"मध्यलोक विषै विधिपूर्वक कृत्रिम जिन बिम्ब राजे हैं तिनकूं हमारा नमस्कार होऊ"।

जो लेप सहित ही होते तो विधिपूर्वक ऐसे काहे कूं कहते, यातें जिनबिंब निर्लेप ही पूज्य है।

और चर्चा संग्रह ग्रन्थ में ऐसे कहि है :

(ब्र. रायमलजी कृत)

शंका—मुनि महाराज के कोई अज्ञानी पुरुष चन्दन लगाय दे वा वस्त्र गहणां पहराय दे, बहुरि प्रतिमाजो के चन्दन वा केशर अंग के लगाय दे तब वे मुनि वा प्रतिमा जी पूजवा वंदवा योग्य छै कि नांही ?

ताका समाधान—मुनि महाराज तो वंदवा जोग्य छै अरु प्रतिमाजी पूजवा वन्दवा जोग्य छै नहीं सो ही कहिये है। जैसे—एक तो अकृत्रिम डोलां राजा अर एक चित्राम काष्ठादि का कृत्रिम राजा। सो अकृत्रिम राजा अपना सेवकां का किया राजकाज के गुण रहित होय नांही। अर सेवगां का किया गुण सहित होवे नांही, आपमें से पराक्रम आदि राजा का गुण जाय तब राजा को राजापणों जाय। अर राज करने के गुण उत्पन्न होय तब राज पद के योग्य होय है। अर कृत्रिम राजा का आकार सेवकां का किया बणाया है सो अपने सेवक अपने स्वामी सादृश्य आकार बणावे तो वैसा ही बणे तब मूल राजा देखि राजी होय। अर अन्य राजा का सा आकार बणावे तो वैसा हो बणे, तब मूल राजा देखि अति कोप करे। त्योंही मुनिराज वा केवली तो अकृत्रिम गुरु या देव हैं सो तो रत्नत्रय धर्म करि विराजमान हैं। रत्नत्रय गुण जांय तब वाका पद में

कसर पड़े सो रत्नत्रय गुण तो स्वाधीन है, कोई का खोया गुण जाय नांही तातें पूज्य ही है। अर प्रतिमाजी कृत्रिम देव हैं सो सेवगांका किया हुआ है, तातें अरिहंत सादृश्य जिनबिम्ब निर्मापिये तो वैसा बणे अर और कोई अन्य देव का सा आकार बणावे तो वैसा बणे सो पूज्य है नाहीं। तातें प्रतिमाजी के केशरि वा चन्दनादि का विलेपन किया और ही सराग देवसा दीखे तातें पूज्य कैसे मानिये। जातें प्रतिमाजी निरावरण ही सर्व प्रकार पूज्य है, यामें संदेह नांही। अर पूर्व दिशा सूं लगाय दक्षिण दिशा जैन बदरी पर्यन्त एक निरावरण ही का चलण है। दक्षिण दिशा की तरफ जैनी राजा जैनी प्रजा अब भी पाइये हैं तातें निरावरण ही प्रतिमा पूरवली रीति चली आवे है। अर या देश में काल-दोष करि धर्म को न्यूनता विशेष हुई अर मिथ्यात्व का चलण प्रबल प्रचुर भया तातें भेष्यां प्रतिमाजी ने तो सराग रूप किया अर भैरूं भवानी आदि कुदेव जिनमंदिर विषे स्थाप्या। श्रद्धानी पुरुषां को आबो मने कियो। भेष्यां ऐसो विचार करचां जो श्रद्धानी पुरुष अठे आवसी तो म्हां का औगुण प्रकाश सी तो म्हाने कुण मानसी तातें ऐसा विचार करिये जां कारणकरि वांको आबो नांही होय। तासूं प्रतिमाजी ने सराग रूप किया। ऐसा अर्थ जानना। और भी ऐसे कहे हैं :

सवैयाइकतीसा—गुणस्थान तेरह में केवल प्रकाश भयो,
इन्द्र पूजा करने को आया भगवान् की ।
तीजी कटनी पे दूर खड़ो भगवानजी सूं,
छोडे वसुद्रव्य जांसू कला बढ़े ज्ञान की ।
धर्म संग्रह ग्रंथ में व्याख्यान कियो ग्रंथकार,
तामें जिन प्रतिमा है जिन ही समान की ।
तातें जिन बिम्ब पाय लेप न लगाय कछु,
लेप जो लगावे ताकी बुद्धि है अज्ञान की ।।७।।

दोहा—देव देव सबही कहे, देव न जाने कोय ।
लेप पुष्प अरु केवड़ा, कामीजन के होय ।।१।।
जिन प्रतिमा जिन सारखी, यह निश्चय निरधार ।
गंध पुष्प अरु केवड़ा, लागे नांहि लगार ।।२।।
जिन प्रतिमा लक्षण कह्यो, जिन आगम अनुसार ।
सम्यक् चारित युक्त जो, बाहिज रूप निहार ।।३।।
जिन प्रतिमा में भेद नहिं, अंतर बाहिज शुद्ध ।
पुष्प लेप अरु केवड़ा, यह प्रत्यक्ष विरुद्ध ।।४।।
एक देश चारित विषे, त्यागे सब शृंगार ।
गंध पुष्प अरु केवड़ा, छीवे नांहि लगार ।।५।।
क्षायिक चारित युत भये, तिनकी प्रतिमा सार ।
जिनके लेप जु केवरा, शोभे नहीं शृंगार ।।६।।
देव जिनागम में कह्या, तामें दोष न लेश ।
लेप पुष्प में दोष बहु, कैसे होय प्रवेश ।।७।।

देव सरागी के विषे, पावे दोष अपार ।
फूल माल अरु केवरा, सो राखे शृंगार ।।८।।
अन्तरंग जो शुद्ध है, निश्चय बाहिज शुद्ध ।
अन्तर होय अशुद्धता, बाहिज नेम अशुद्ध ।।९।।
वीतराग ही देव हैं, रागी होय कुदेव ।
राग सहित कूं त्याग के, वीतराग कूं सेय ।।१०।।

सवैया इकतीसा-

वीतराग देव जू के बिंब पे लगावे कोऊ,
कुंकुमादि लेप पुष्प केवड़ा विकार है ।
ताके दृढ बंध होय कोडा कोडी सत्तरि को,
नरक निगोद मांहि पावे दुःख भार है ।।
तहाँ ते निकसि पुनि सिंह सर्प आदि होय,
हिंसा करि फेरहु नरक पद धारे है ।
तातें जिन बिंब पाय दोष न लगावे कोऊ,
दोष जो लगावे ताके कष्ट को न पार है ।१८।
सराग चिह्न देखि के नमत कर शीशधार,
सो तो मिथ्यामती जिनवाणी इम गायो है ।
तापे दुरबुद्धि कहे हमरो स्वभाव शुद्ध,
बाहिर नमन कैसे सम्यक् पलायो है ।।
ताके छल खंडवे कूं सुगुरु बहुरि कहे,
एहु तो एकान्त तुम मनतें उपायो है ।

अन्तरंग शुद्ध सो तो बाहिर हु शुद्ध होय,
बाहिर शुद्धता को नेम न बतायो है ॥१९॥

केइ मूढमति फूल केवड़ा सराग कहे,
केशरादि लेप सूं सराग न ठहरावे है ।
सो तो जिन मत सूं प्रत्यक्ष ही विरुद्ध कहे,
रागी के से लेपकूं विरागी के बतावे है ।
छदमस्थ ज्ञानी मुनिराज हूँ के लेप किये,
भोजन कूं त्याग वे वनकूं सिधावे हैं ।
कैसे सरवज्ञ वीतरागजी के लागे लेप,
पक्ष को हटाहटी ही मनमानी गावे है ॥२०॥

केइ मंद बुद्धि कहे जानत हैं भेद सब,
केवड़ादिलेप पुष्प रागी के सिंगारे हैं ।
करे कहाँ जोर नांही भेषी हू प्रबल भए,
तिनके बहकाये नाती गोती बैर धारे हैं ।
हमतें तजे न जाय सगे सो ही कहे आय,
ये ही उर डर ल्याय नमनो चितारे हैं ।
सो तो मिथ्यामति जिनवाणी इम कहे भैया,
हाथ ले चिराग खड्ड पड़नो विचारे है ॥२१॥

केई मायाचारी कहे एक आम्नाय मांही,
केवड़ादिलेप फूल बिंब पे लगावे है ।

दूजो आम्नाय मांही बिंब पे लगावे नांही,
ताको भेदाभेद कहूँ वर्णन पावे है ।
सो तो मूढ मिथ्यामति जैन ग्रंथ ज्ञानी नाहीं,
प्रत्यक्ष सराग तामें संशय बतावे है ।
ऐसे मायाजाली कलिकाल तें प्रगट भए,
तातें सरधानी जीव पल्लो न छिवावे है ॥२२॥

केई महामानी शठ बिंब कूं पहराय माल,
ताहूँ कू नीलाम करे करे निंद्य काम है ।
जेते जन तहाँ होय तेतें वचन कहें लोय,
इतने रूपैये देवें माला सही ठाम है ।
तिन मांही एक लेय उतकृष्ट मोल देय,
शेष धन राखलेय निरमायल दाम है ।
ऐसे परपंच धरे बिंब की अवज्ञा करे,
तांहि फल सेती पावे नर्क दुखधाम है ॥२३॥

वीतराग बिंब सो ही दोष को न लेश कहीं,
अंतरंग शुद्ध अति बाहिर हू शुद्ध है ।
केवड़ादिलेप फूल जाके तन नांही सोहे,
रागी के शृंगार वीतरागी के विरुद्ध है ॥
ऐसे भेद पाय के विचार न करत शठ,
इन मांही को विरागी रागी को अशुद्ध है ।

विनय करे दोऊन को दोऊं को समान माने,
सो तो विनय मिथ्यामति ताको बुद्धि कुंद है।२४।
सावरण पूजे नाहीं सुरपति नरपति,
सावरण पूजे नांहीं खग नाग पति जूं ।
सावरण पूजे नांही गंधर्व मुनिराज,
सावरण पूजे नांही जांकी भली मति जूं ।
काल दोष पाय जिन बिंब कूं पहराय माल,
केवड़ा बगल धरि लेय गंध सेती जू ।
ऐसी विधि परपंच रचि के सराग चिह्न,
ताकूं पूजे मूढ कहे हम समकति जू ॥२५॥
अन्तरंग बहिरंग निरावर्ण जिन बिंब,
ताकूं पूजे इन्द्र धरणेन्द्र चक्रवर्ती जू ।
नारायण बलिभद्र कामदेव प्रतिहर,
और हूँ स्वर्गिन्द चन्द पूजे शुद्ध मति जू ।
सर्वसंग त्यागी गणधर मुनिराज एक,
पूजे निरावर्ण यामें संशय न रत्ती जू ।
ताको साखी जैन ग्रंथ ग्रंथ में जिनेन्द्र कही,
ताकूं सरधि पक्ष तजि होउ समकती जू ॥२६॥

अडिल्ल—

प्रश्नोत्तर ये सार रतन हृदय धरें,
वीतराग जिन बिंब निरखि वंदन करें ।

जिन समान निज रूप लखें सुखकंद ही,
जौहरी सुर शिव पाय लहे आनन्द ही ॥२६॥

इति श्री प्रश्नोत्तर व्याख्यान संपूर्ण ॥

मिती वैशाख शुक्ला १५ शनिश्चर वार संवत् १९६५ का ने लिखकर तैयार करी, लिखी केशरीमल बड़जात्या दांता निवासी ने । लिखबा में भूलचूक होय तो बुधजन क्षमा करके शुद्ध कीज्यो ।

शुभम् ॥ श्रीरस्तु, कल्याणमस्तु ॥

परिशिष्ट

(१)

इस ग्रन्थ में जिन ग्रन्थों की साक्षी दी हैं उनके नाम :

१. आप्त परीक्षा--देवागम स्तोत्र (समन्तभद्राचार्य कृत)
२. अकलंक चरित (प्रभाचन्द्र कथा कोश कथा नं. २)
३. ज्ञानार्णव (शुभचन्द्राचार्य कृत)
४. आदि पुराण (जिन सेनाचार्य कृत)
५. बनारसी विलास
६. समयसार नाटक } पं० बनारसीदासजी कृत)
७. मोक्षमार्ग प्रकाशक (पं० टोडरमलजी कृत)
८. चर्चा संग्रह (ब्र० रायमलजी कृत)
९. धर्म संग्रह (श्रावकाचार) पं० मेधावी कृत

(२)

इस ग्रन्थ के उपान्त्य में ब्र० रायमल्लजी के "चर्चा संग्रह" के हवाले से १ शंका—समाधान दिया है जिसमें बताया है कि—"अगर कोई प्रतिमा के और मुनि के पुष्प केशर लगादे तो प्रतिमा तो अपूज्य है और मुनि पूज्य है। क्योंकि मुनि का रत्नत्रय तो किसी दूसरे के बिगाड़े से नहीं बिगड़ता न सुधारे से सुधरता है। वह तो मुनि के स्वयं के आधीन है। किन्तु प्रतिमा तो जड़ है उसका वीतराग

स्वरूप तो अज्ञानी भ्रांत पूजकों द्वारा बिगाड़ा जाना संभव है।

जैसे—दि० आम्नाय में भट्टारक पंथादि द्वारा बिगाड़ा जाता है। ऐसी प्रतिमा अपूज्य है।"

यहाँ बहुत से प्रश्न उठ सकते हैं हम अपनी ओर से ऐसे प्रश्न उठाकर नीचे उनका समाधान करते हैं ताकि यह विषय और भी सुस्पष्ट हो जाये। इसके पहिले केशर चन्दन लगी प्रतिमा के अपूज्यत्व पर एक कथा उद्धृत करते हैं :

एक राजा और एक सेठ थे, सेठ ने जिन मंदिर बना कर मूर्ति विराजमान की। प्रथम दर्शन पूजन के लिए राजा को बुलाया गया। राजाने जिन पूजन कर चन्दन का तिलक लगाया और मूर्ति को साष्टांग प्रणाम किया तो भाल का तिलक मूर्ति के पादांगुष्ठ पर लग गया। राजा तो महल में आ गये, फिर सेठ और नागरिक दर्शन पूजन को आये तो सेठ ने मूर्ति पर चन्दन लगा देखकर कहा-मूर्ति को सरागी परिग्रही कर यह उपसर्ग किसने किया है। घोर संकट आता दिखता है। मूर्ति एक सूत्र मात्र डालने से अपूज्य हो जाती है, अकलंक निकलंक की इस कथा के ज्ञाता महाराज दर्शन कैसे कर गये ? उनके सिवा और कोई आया भी नहीं। सेठजी ने पुनः प्रक्षाल कर मूर्ति को शुद्ध करना

चाहा तो कुछ भाई बोले—महाराज क्या मूर्ख थे, उन्होंने ही मूर्ति के चन्दन लगाया है, यही पूजा-पद्धति है, हम तो "यथा राजा तथा प्रथा" के अनुसार चलेंगे। सच है अज्ञान से इसी प्रकार कुरीतियाँ प्रचलित होती हैं।

महाराज महल में पहुँचे तो गर्भवती रानी ने पूंछा—तिलक उतरा हुआ कैसे है ? यह अनिष्ट सूचक है। दर्पण देखकर राजा बोले—चन्दन मूर्ति के पादांगुष्ठ पर लग गया दिखता है। रानी बोली—अंधानुसरण करने वाले बहुत हैं विवेकी कम हैं। गतानुगतिको लोकः, न लोकः पारमार्थिकः। राजा बोले—कुछ भी हो, सेठ तो शास्त्रज्ञ हैं वे ही सुधार करवा देंगे। ३ दिन बीत गये न राजा जा सके और न सेठ की लोगों ने चलने दी। रानी के मृत पुत्र हुआ और वह भी मर गई, राजा भी शोक ग्रस्त हो मर गया। एक दफा ऋद्धिधारी निमित्तज्ञानी मुनीश्वर पधारे, सेठ ने आहार दिया और विचित्र रूप से राज परिवार के मरण का कारण पूछा तो मुनिराज बोले—चन्दन का तिलक मूर्ति के लग जाने और ३ दिन तक प्रमादी राजा द्वारा उसका निराकरण न होने से तीनों का मरण हुआ है। इस प्रकार मूर्ति पर कभी उपसर्ग नहीं करना चाहिये।

"समयसार" तात्पर्य वृति गाथा ४१४ में लिखा है :

"भावलिंगे सति बहिरंगं द्रव्यलिंगं भवतीति नियमो

नास्ति। परिहारमाह—कोऽपि तपोधनोध्यानारूढ़स्तिष्ठति तस्य केनापि दुष्टभावेन वस्त्र-वेष्टनं आभरणादिकं वा कृतं तथाप्यसौ निर्ग्रन्थ एव बुद्धिपूर्वकममत्वाभावात्।" (भावलिंग होने पर बहिरंग द्रव्य लिंग होता है ऐसा कोई नियम नहीं जैसे कोई ध्यानस्थ साधु को वस्त्राभरण से वेष्टित कर दे तो भी साधु निर्ग्रन्थ है क्योंकि उसके बुद्धि पूर्वक ममत्व का अभाव है।)

रत्नकरण्ड श्रा० में भी बताया है कि—"चेलोपसृष्ट मुनिरिव गृही तदा याति यतिभावं ॥१०२॥ सामायिक में गृहस्थ वस्त्र से उपसर्ग किये मुनि की तरह यतिभाव को प्राप्त होता है। इससे भी सिद्ध होता है कि सच्चे साधु पर वस्त्र डालने पर भी उसका मुनित्व नहीं जाता, हाँ वह उपसर्ग जरूर माना जाता है। जब तक उपसर्ग दूर न हो मुनि ध्यान में ही रहते हैं। जैसे राजा श्रेणिक ने एक ध्यानस्थ मुनि के गले में मृतसर्प डाल दिया, श्रेणिक चार रोज बाद रानी चेलना के साथ गये तो मुनि वैसे ही ध्यान मग्न थे। राजा रानी ने सर्प हटाकर शुद्धि की, फिर मुनि को नमस्कार किया तो उन्होंने दोनों को आशीर्वाद दिया। इसी तरह देशभूषण कुलभूषण मुनिराज पर सर्प बिच्छुओं का उपसर्ग हुआ तो राम लक्ष्मण सीता ने दूर किया, फिर मुनियों की बंदना की। (देखो—पद्मपुराण पर्व ३९ श्लोक ४३--४४)

मुनियों को उपसर्ग में देखकर पहिले श्रावक उनका उपसर्ग दूर करता है, फिर वंदना करता है।

"मूलाचार" षडावश्यकाधिकार में बताया है कि—

वाखित पराहुतं नु, पमत्तं मा कदाइ बंदिज्जो।
आहारं च करन्तो, णीहारं वा जदि करेदि ॥१००॥

अर्थात्—जब साधु व्याक्षिप्त हो, अन्यमनस्क हो, निद्रा विकथादि में लीन हो, आहार निहार कर रहे हों तो कदापि उनकी वंदना नहीं करना चाहिये।

इसी प्रकार अगर कोई अज्ञान भाव से साधु पर वस्त्र डाल दे, उनके चन्दन केशर लगा दे, उन पर पुष्पादि चढ़ा दे तो यह सब साधु पद के अयोग्य क्रिया होने से उन पर उपसर्ग (संकट) है। श्रावक का सर्व प्रथम कर्त्तव्य है कि—साधु पर से इस उपसर्ग को दूर करे।

अगर साधु ध्यानस्थ नहीं है और अचानक (एकाएक) कोई अज्ञानी उनके केशर पुष्प लगादे तो साधु—उन्हें हटाकर शुद्धि करा लेंगे जैसे उनके पक्षी की बींट, मलादि लगने पर—कमंडलु के जल से वे शुद्धि कराते हैं, अस्पृश्य जनादि के स्पर्श होने पर दण्ड स्नान बताया है। देखो—"षट् पाहुड"—मोक्ष पाहुड गाथा ९८ की टीका)

मूलाचार अ० १ गाथा ३०–३१ तथा अ० ९ गाथा ७१–७२ में साधु के चन्दनादि विलेपन, पुष्पाभरणादि का

सर्वथा निषेध किया है। क्योंकि यह उनके पद विरुद्ध है इससे कोई प्रयोजन भी सिद्ध नहीं होता। अतः यह उनको कभी इष्ट नहीं है। श्रावक को भी भक्ति राग वश कभी ऐसी क्रिया नहीं करनी चाहिये। यह तो साधु के लिए उपसर्ग अन्तराय है। (इससे साधु बाह्य रूप से अपूज्य बन जाता है, अन्तरंग में रत्नत्रय होने से पूज्यत्व रहता है। बाह्य रूप पराधीन है, अन्तरंग स्वाधीन हैं। अगर स्वयं साधु को यह सब इष्ट हो तो वह अन्तरंग से भी अपूज्य हो जाता है। अन्तरंग से भ्रष्ट होना पूर्ण अपूज्य होना है।)

रतनलाल कटारिया (संपादक)
२२-११-८६

॥ श्री ॥

सन्मार्ग प्रचार समिति

★

—उद्देश्य—

१. अविवेक पूर्ण थोथे क्रियाकांडों, सम्यक्त्व को मलिन करने वाले मिथ्यात्व के परिपोषक विधि विधानों, अपार मंहगाई के युग में धर्म के नाम पर किये जाने वाले अपव्ययों का प्रतिरोध।

२. साधुवेषियों और उनके समर्थक स्वार्थी पण्डितों द्वारा की जाने वाली—सिद्धान्त—विरुद्ध प्ररूपणा, वीतराग धर्म—विमुख पद्धति, समाज को विशृंखल करने वाली कलह विसंवाद—जनक प्रवृत्ति, मिथ्या—प्रचार और शिथिलाचार का विरोध।

३. गुरुडमवाद से मुक्ति दिलाकर जागृति पैदा करने वाले, जिनशासन की प्रभावना करने वाले, वीतराग मार्ग के परिपोषक, समीचीन-धर्म के उद्-बोधक, अहिंसा के प्ररूपक क्रिया-कलापों का सम्यक् प्रचार।

—नियम—

१. वितंड़ावाद कषाय—भावना व्यक्तिगत आक्षेपादि से दूर, शांत शालीन पद्धति में विश्वास रखने वाला, सद्धर्म-प्रचार की भावना रखने वाला, अहिंसा और वीतराग मार्ग की रक्षा के लिए सदैव सन्नद्ध, निर्भीक और स्वस्थ विचारक कोई भी सज्जन इस समिति का सदस्य बन सकता है।

२. सदस्यता फीस ३१) रुपये हैं।

—: कार्य :—

फिलहाल समिति ने सन्मार्ग-प्रचारार्थ एक ग्रन्थमाला प्रारंभ की है जिसका नाम "श्री मिलापचन्द्र कटारिया जैन ग्रन्थ माला" रखा गया है।

५ मई ७१ को दिवंगत पंडित प्रवर मिलापचन्द्रजी सा० कटारिया केकड़ी की अनवरत श्रुत-सेवाओं को अक्षुण बनाये रखने के लिए उनकी पुनीत स्मृति में यह ग्रन्थमाला स्थापित की गई है।

समिति के सदस्यों को इस ग्रन्थमाला के सभी प्रकाशन बिना मूल्य दिये जाने का प्रावधान है।

कोई भी सज्जन समिति के उद्देश्यों के अन्तर्गत किसी भी विषय का कोई ट्रेक्ट छपवाना चाहें तो समिति छपवा देगी। अर्थ-व्यय उन्हें वहन करना होगा।

किसी भी त्यागी और पंडित द्वारा वीतराग मार्ग पर की जाने वाली कैसी भी आपत्ति, शंका, उत्सूत्रप्ररूपणा आदि के निरसन के लिए कभी भी किसी संस्था, समाज और व्यक्ति विशेष को आवश्यकता हो तो समिति से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। समिति हर संभव सहयोग के लिए सदैव तैयार रहेगी।

सारं यत्सर्वसारेषु, वंद्यं यद् वंदितेष्वपि ।
अनेकान्तमयं वन्दे, तदर्हद्वचनं सदा ॥

मंत्री—
पदमकुमार कटारिया केकड़ी, (अजमेर)

॥ श्री ॥

(बीस विहरमान पूजा के अंत में)

देश ढूंढाहर में परधान, नगर सवाई जयपुर थान ।
श्रावक शैली शुद्ध स्वरूप, जिनवर तेरा पंथ अनूप ॥१॥
तिन में शाह अभयचन्द एक, जिनवर भक्ति धरे सुविवेक ।
तिन के लघु सुत जौहरीलाल, सम्यक् श्रद्धा धरेत विशाल ॥२॥
मूलचन्दजी सेठ कहाय, राय बहादुर पदवी पाय ।
सोनी गोत्र जु श्रावक शुद्ध, है अजमेर सु थान प्रबुद्ध ॥३॥
तिनकी कोठी जयपुर ठान, तिसमें जौहरीलाल प्रधान ।
जिनवर भक्ति जगी उर मांहि, तातें यह वर पाठ रचाहिं ॥४॥
संवत् उगणी से गुनचास, सुदि चौदस श्रावक शुभ मास ।
ता दिन पूर्ण रची शुभ एव, पूजा बीस जिनेश्वर देव ॥५॥
बांचो पढो हरष मन लाय, जिनवर भक्ति सदा सुखदाय ।
मात्रा वर्ण न्यूनाधिक होय, शोधि सुधारो पंडित लोय ॥६॥

(विक्रम सं० १९४९ श्रावण सुदी १४ को बीस विरहमान पूजा रची)